संविधानवाद का इतिहास भी उतना ही पुराना है, जितना राजनीतिक संस्थाओं का इतिहास। राजनीतिक संस्थाओं और राजनीतिक शक्ति के प्रादुर्भाव ने मानव को इनकी निरंकुशता के बारे में सोचने को बाध्य किया है। शक्ति मनुष्य को भ्रष्ट करती है और जब इसका सम्बन्ध राजनीतिक संस्थाओं या राजनीति से जुड़ जाता है तो इसके पथभ्रष्ट व दुरुपयोग की संभावना बहुत ज्यादा हो जाती है। इसलिए एक चिन्तनशील व सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य ने प्रारम्भ से ही इस राजनीतिक शक्ति के दुरुपयोग को रोकने के लिए सामाजिक रूप में कुछ नियन्त्रण व बाध्यताएं राजनीतिक शक्ति के ऊपर लगाई हैं। ये बाध्यताएं परम्पराओं, कानूनों, नियमों, नैतिक मूल्यों के रूप में भी हो सकते हैं और संगठित संवैधानिक शक्ति के रूप में भी। संविधान ही एकमात्र ऐसा प्रभावशाली नियन्त्रण का साधन होता है, जो राजनीतिक शक्ति को व्यवहार में नियन्त्रित रखता है और जन–उत्पीड़न को रोकता है। यदि राजनीतिक शक्ति या संस्थाओं पर संविधानिक नियन्त्रण न हो तो वह अत्याचार करने से कभी नहीं चूकती। इस अत्याचार और अराजकता की स्थिति से बचने के लिए शासक और शासन को बाध्यकारी बनाया जाता है। यही बाध्यता व्यक्ति की स्वतन्त्रता और अधिकारों की रक्षक है। यद्यपि व्यवहार में कई बार शासक वर्ग राजनीतिक शक्ति का दुरुपयोग भी कर देता है, लेकिन ऐसा तभी सम्भव है, जब शासित वर्ग जागरुक ना हो या वह शासक वर्ग में अन्धाधुन्ध विश्वास रखने वाला हो। इसी कारण से राजनीतिक शक्ति को नियन्त्रित रखने ओर उसे जन–कल्याण का साधन बनाने के लिए उसमें उत्पीड़न या बाध्यता (Coecive) का समावेश कराया जाता है। इस उत्पीड़न या बाध्यता की शक्ति को संविधान तथा सभी शासकों को नियन्त्रित अधिकार क्षेत्र में रखने की संवैधानिक व्यवस्था को संविधानवाद कहा जाता है।

संविधानवाद का अर्थ (Meaning of Constitutionalism)

संविधानवाद एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था है जिसका संचालन उन विधियों और नियमों द्वारा होता है जो संविधान में वर्णित होते हैं। इसमें निरंकुशता के लिए कोई जगह नहीं होती है और शासन संचालन लोकतांत्रिक तरीके से किया जाता है। संविधान और संवैधानिक सरकार संविधानवाद के आधार–स्तम्भ हैं। संविधानवाद उसी राजनीतिक व्यवस्था में सम्भव है, जहां संविधान हो और शासन संविधान के नियमों के अनुसार ही होता हो। इसलिए संविधान और संवैधानिक सरकार के बारे में भी जानना जरूरी है।

संविधान उन कानूनों या नियमों का संग्रह होता है जो सरकार के संगठन, कार्यों, उद्देश्यों, सरकार के विभिन्न अंगों की शक्तियों, नागरिकों के पारस्परिक सम्बन्धों, नागरिकों के सरकार के साथ सम्बन्धों की व्याख्या करता है। हरमन फाईनर ने इसे परिभाषित करते हुए कहा है–"संविधान आधारभूत राजनीतिक संस्थाओं की व्यवस्था है।" आस्टिन के अनुसार–"संविधान वह है जो सर्वोच्च सरकार के संगठन को निश्चित करता है।" डायसी के अनुसार–"वे सब नियम जिनके द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में राजसत्ता का वितरण तथा प्रयोग किया जाता है, राज्य का संविधान कहलाते हैं।" फ्रेडरिक के अनुसार–"संविधान जहां एक तरफ सरकार पर नियमित नियन्त्रण रखने का साधन है, वहीं दूसरी तरफ समाज में एकता लाने वाली शक्ति का प्रतीक भी है।" सी०एफ० स्ट्रांग के अनुसार–"संविधान उन सिद्धान्तों का समूह है जिनके अनुसार राज्य के अधिकारों, नागरिकों के अधिकारों और दोनों के सम्बन्धों में सामंजस्य स्थापित किया जाता है।" लोवेन्स्टीन ने कहा है–"यह शक्ति प्रक्रिया पर नियन्त्रण के लिए आधारभूत साधन है और इसका प्रयोजन राजनीतिक शक्ति पर सीमा लगाने व नियन्त्रण करने के तरीकों का उच्चारण है।" ब्राईस के अनुसार–"किसी राज्य अथवा राष्ट्र के संविधाना में वे कानून या नियम शामिल होते हैं जो सरकार के स्वरूप को निर्धारित करते हैं तथा उसके नागरिकों के प्रति कर्तव्यों और अधिकारों को बतलाते हैं।"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि संविधान शासक व शासितों के सम्बन्धों को निर्धारित करने वाला महत्वपूर्ण कानून है। यद्यपि व्यवहार में इसका रूप अलग भी हो सकता है। संविधान लिखित तथा अलिखित दोनों प्रकार के हो सकते हैं। यद्यपि सिद्धान्त में तो संविधान शासक वर्ग पर नियन्त्रण की व्यवस्था करता है, लेकिन कई बार व्यवहार में संविधान का शासक वर्ग पर कम नियन्त्रण पाया जाता है। इसका कारण उस राज्य में संवैधानिक सरकार का न होना है। प्रथम विश्वयुद्ध के जर्मनी में संविधान तो था, लेकिन वहां संवैधानिक सरकार नहीं थी। सारी शासन–व्यवस्था पर हिटलर का निरंकुश नियन्त्रण था। इसलिए संविधानवाद के लिए संविधान के साथ साथ संवैधानिक सरकार का होना भी जरूरी है।

Scanned with CamScanner
Scanned with CamScanner
Scanned with CamScanner

संवैधानिक सरकार वह होती है जो संविधान की व्यवस्थाओं के अनुसार संगठित, सीमित और नियन्त्रित हो तथा व्यक्ति विशेष की इच्छाओं के स्थान पर केवल विधि के अनुसार ही कार्य करती हो। प्रथम विश्व युद्ध के बाद जर्मनी, इटली, रूस आदि देशों में संविधान होते हुए भी संवैधानिक सरकारों का अभाव था, क्योंकि वहां के तानाशाही शासकों के लिए संविधान एक रद्दी कागज की तरह था। इसलिए वहां पर संविधानवाद नहीं था। संविधानवाद के लिए संविधान के साथ–साथ संवैधानिक सरकार का होना भी अत्यन्त आवश्यक होता है। संवैधानिक सरकार ही संविधान को व्यावहारिक बनाती हैं। संविधान के व्यवहारिक प्रयोग के बिना संविधानवाद की कल्पना नहीं की जा सकती।

संविधान और संवैधानिक सरकार का अर्थ–स्पष्ट हो जाने पर संविधानवाद को आसानी से समझा जा सकता है। संविधानवाद आधुनिक युग की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। यह उन विचारों व सिद्धान्तों की तरफ संकेत करता है, जो उस संविधान का विवरण व समर्थन करते हैं, जिनके माध्यम से राजनीतिक शक्ति पर प्रभावशाली नियन्त्रण स्थापित किया जा सके। संविधानवाद निरंकुश शासन के विपरीत नियमों के अनुसार शासन है जिसमें मनुष्य की आधारभूत मान्यताएं व आस्थाएं शामिल हैं। संविधानवाद शासन की वह पद्धति है जिसमें जनता की आस्थाओं, मूल्यों, आदर्शों को परिलक्षित करने वाले संविधान के नियमों व सिद्धान्तों के आधार पर ही शासन किया जाता है और संविधान के द्वारा ही शासक वर्ग को प्रतिबंधित या नियन्त्रित किया जाता है ताकि व्यवहार में शासक वर्ग निरंकुश न बनकर जन–इच्छा के अनुसार ही शासन करता रहे। इस प्रकार संविधानवाद एक सीमित शासन भी है क्योंकि इसमें प्रतिबन्धों की व्यवस्था होती है। संविधानवाद को परिभाषित करते हुए अनेक विद्वानों ने कहा है :–

पिनाक और स्मिथ के अनुसार–"संविधानवाद केवल प्रक्रिया एवं तथ्यों का ही मामला नहीं है बल्कि राजनैतिक शक्तियों के संगठनों का प्रभावशाली नियन्त्रण भी है, एवं प्रतिनिधित्व, प्राचीन परम्पराओं तथा भविष्य की आशाओं का भी प्रतीक है।"

सी० एफ० स्ट्रांग के अनुसार–"संवैधानिक राज्य वह है जिसमें शासन की शक्तियों, शासितों के अधिकारों और इन दोनों के बीच सम्बन्धों का समायोजन किया जाता है।"

कोरी तथा अब्राहम के अनुसार–"स्थापित संविधान के निर्देशों के अनुरूप शासन को संविधानवाद कहा जाता है।"

जे० एस० राऊसैक के शब्दों में–"धारणा के रूप में संविधानवाद का अभिप्राय है कि यह अनिवार्य रूप से सीमित सरकार तथा शासन के रूप में नियन्त्रण की एक व्यवस्था है।"

कार्टन एवं हर्ज के अनुसार–"मौलिक अधिकार तथा स्वतन्त्र न्यायपालिका प्रत्येक संविधानवाद की अनिवार्य और सामान्य विशेषता है।"

के० सी० व्हीयर के अनुसार–"संवैधानिक शासन का अर्थ किसी संविधान के नियमों के अनुसार शासन चलाने से कुछ अधिक है। इसका अर्थ है कि निरंकुश शासन के विपरीत नियमानुकूल शासन। ऐसा तभी संभव है जब किसी देश का शासन संविधान के नियमों के अनुसार ही चलता हो। इसके पीछे मौलिक उद्देश्य यही है कि शासन की सीमाएं बांधी जा सकें और शासन चलाने वालों के ऊपर कानूनों व नियमों का बन्धन रहे।"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि संविधानवाद का अर्थ है–उत्तरदायी व सीमित सरकार (Responsible and Limited Government)। इसके आधार हैं संविधान और संविधानिक सरकार। यद्यपि इनकी निश्चित परिभाषा देना कठिन है। उपरोक्त सभी परिभाषाएं पूर्ण नहीं हैं। समय और परिस्थितियों के अनुसार संविधानवाद का अर्थ बदल जाता है। लेकिन यह बात तो सत्य है कि संविधान (लिखित या अलिखित) तथा संवैधानिक सरकार के बिना इसकी कल्पना नहीं की जा सकती।

संविधान और संविधानवाद में अन्तर (Difference between Constitution and Constitutionalism)

संविधान ही संविधानवाद का आधार होता है। कुछ राजनीतिक विद्वान इन दोनों को पर्यायवाची मानते हैं, लेकिन व्यवहार में स्थिति भिन्न हो सकती है। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जर्मनी और इटली में संविधान तो थे, लेकिन संविधानवाद नहीं था। इसलिए संविधान और संविधानवाद में परिस्थितियों के अनुसार अन्तर होता है। इस अन्तर के प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं :–

(1) **परिभाषा की दष्टि से अन्तर (Difference from the view point of definition)** :- यदि परिभाषा के आधार पर देखा जाए तो संविधान एक संगठन का प्रतीक होता है तथा संविधानवाद एक विचारधारा का प्रतीक है, जिसमें राष्ट्र के मूल्य, विश्वास तथा राजनीतिक आदर्श शामिल होते हैं। संविधान एक ऐसा संगठन है जिसमें सरकार और शासितों के सम्बन्धों को निर्धारित किया जाता है। संविधान राजनीतिक व्यवस्था के शक्ति सम्बन्धों की आत्मकथा है। संविधानवाद उन विचारों का द्योतक है जो संविधान का वर्णन और समर्थन करते हैं तथा जिसके माध्यम से राजनीतिक शक्ति पर प्रभावकारी नियन्त्रण कायम रखना

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

संभव होता है। सी०एफ० स्ट्रांग ने संविधान को परिभाषित करते हुए कहा है–"संविधान उन सिद्धान्तों का समूह है जिनके अनुसार राज्य के अधिकारों, नागरिकों के अधिकारों और दोनों के सम्बन्धों में सामंजस्य स्थापित किया जाता है।" संविधानवाद को परिभाषित करते हुए कोरी तथा अब्राहम ने लिखा है–"स्थापित संविधान के निर्देशों के अनुरूप शासन को संविधानवाद माना जाता है।" इस प्रकार परिभाषा की दष्टि से संविधान एक संगठन का तथा संविधानवाद एक विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता है।

(2) **प्रकृति की दष्टि से अन्तर (Difference from the view point of Nature)** :- प्रकृति की दष्टि से संविधान एक साधन प्रधान धारणा है और संविधानवाद एक साध्य प्रधान धारणा है। संविधानवाद राजनीतिक समाज के लक्ष्यों और उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सुव्यवस्था है। यह हर समाज के गन्तव्यों को प्राप्त करने की संविधान रूपी साधन द्वारा चेष्टा करता है। इस तरह संविधान वह साधन है जो राजनीतिक समाज के लक्ष्यों व उद्देश्यों को प्राप्त करके संविधानवाद की स्थापना करता है या संविधानवाद रूपी साध्य को प्राप्त करता है।

(3) **उत्पत्ति की दष्टि से अन्तर (Difference from the view point of Origin)** :- संविधान का निर्माण किया जाता है, जबकि संविधानवाद विकास की लम्बी प्रक्रिया का परिणाम होता है। यद्यपि ब्रिटेन का संविधान परम्पराओं पर आधारित व अलिखित होने के कारण इसका अपवाद है। संविधान का निर्माण सर्वोच्च अधिकार प्राप्त किसी संस्था द्वारा किया जाता है। उदाहरण के लिए भारत का संविधान एक संविधान सभा द्वारा लगभग 3 वर्ष में तैयार किया गया था। संविधानवाद किसी भी देश के राजनीतिक समाज के मूल्यों, विश्वासों तथा आदर्शों के विकास का परिणाम होता है। संविधान जनता की आवश्यकताओं के अनुरूप सदैव परिवर्तित व संशोधित होते रहे हैं, लेकिन संविधानवाद की स्थापना के बाद उसे बदलना या समाप्त करना निरंकुशता व अराजकता को जन्म देता है।

(4) **क्षेत्र की दष्टि से अन्तर (Difference from the view point of Scope)** :- क्षेत्र की दष्टि से संविधान एक अपवर्जक (exclusive) तथा संविधानवाद एक अन्तर्भूतकारी (Inclusive) धारणा है। संविधानवाद तो कई देशों में यदि उनकी संस्कृति समान है तो एक पाया जा सकता है, लेकिन संविधान हर देश का अलग–अलग होता है, क्योंकि इसमें वर्णित अधिकार व कर्तव्य, शासक व शासितों के सम्बन्ध प्रत्येक देश के राजनीतिक समाज में अलग–अलग ढंग के होते हैं। यद्यपि कई देशों के संविधानों में भी समानता का लक्षण दिखाई देता है, लेकिन यह लक्षण मात्रात्मक होता है, गुणात्मक नहीं। उदाहरण के लिए लोकतन्त्रीय देशों में संविधान में प्रायः कई प्रकार के समान लक्षण होते हैं। उसी तरह साम्यवादी देशों के संविधानों में भी अलग प्रकार की समानता देखने को मिलती है। इस तरह संविधान एक सीमित अवधारणा है, जबकि संविधानवाद एक विस्तत धारणा है। इसे देशकाल की सीमाएं बांध नहीं सकती।

(5) **औचित्य की दष्टि से अन्तर (Difference from the view point of Legitimacy)** :- संविधान का औचित्य विधि के आधार पर सिद्ध किया जाता है, जबकि संविधानवाद में आदर्शों का औचित्य विचारधारा के आधार पर सिद्ध होता है। जिस देश के संविधान में उचित कानून व नियमों की व्यवस्था होती है तथा संविधान जन–इच्छा के अनुकूल होता है तो उस संविधान को औचित्यपूर्ण माना जाता है। इसी तरह यदि किसी देश में संवैधानिक आदर्शों को संवैधानिक उपायों से ही प्राप्त करने के प्रयास किए जाते हैं तो संविधानवाद का औचित्य सिद्ध हो जाता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संविधान और संविधानवाद में गहरा अन्तर है। एक संगठन का प्रतीक है तो दूसरा विचारधारा का। एक साधन है तो दूसरा साध्य, एक सीमित धारणा है तो दूसरी विस्तत, एक का निर्माण होता है तो दूसरे का विकास। इतने अन्तर के बावजूद भी दोनों में आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यदि दोनों की दिशाएं अलग–अलग होंगी तो इसके राजनीतिक समाज के लिए विनाशकारी परिणाम निकलेंगे।

संविधानवाद के आधार (Foundations of Constitutionalism)

राजनीतिक समाज के लोगों में पाई जाने वाली मतैक्य की भावना ही संविधानवाद का आधार है। यह मतैक्य इतना ठोस और व्यापक होता है कि राजनीतिक शक्ति को जनता के ऊपर आजमाने के कोई आवश्यकता नहीं होती। यह मतैक्य विरोध हो सहमति के बीच में होता है। सामान्य परिस्थितियों में जनता शासक वर्ग की हर आज्ञा का पालन करना अपना धर्म समझती है और संविधान के आदर्शों को प्राप्त करने में शासक वर्ग को पूरा सहयोग देती है। यह मतैक्य जितना अधिक विरोध की बजाय सहमति के नजदीक होगा, उतनी ही अधिक संविधानवाद में ठोसता व व्यावहारिकता का गुण होगा। यही मतैक्य संविधानवाद की आवश्यक शर्त भी है और आवश्यकता भी है। विलियम जी० एण्ड्रयूज के अनुसार यह मतैक्य चार प्रकार का हो सकता है :–

(i) **संस्थाओं के ढांचे और प्रक्रियाओं पर मतैक्य (Consensus on the form of Institutions and procedures)** :- यदि नागरिक यह महसूस करते हैं कि सरकार उनके हितों के विरुद्ध कार्य कर रही हैं तो वे सरकार का विरोध करने में कोई देर

Scanned with CamScanner
Scanned with CamScanner
Scanned with CamScanner

(2) **संविधान राजनीतिक शक्ति के प्रतिबन्धक के रूप में (The Constitution as restraint upon political power)** :- प्रत्येक देश की शासन–व्यवस्था को सुचारु ढंग से चलाने के लिए उस पर कुछ प्रतिबन्धों की व्यवस्था का होना भी संविधानवाद की आधारशिला है। प्रत्येक लोकतंत्रीय राजनीतिक व्यवस्था के संविधान में कुछ ऐसे उपाय किए जाते हैं कि शासन या सरकार हर समय नियंत्रित रहते हुए अपनी शक्तियों को जनहित में ही उपयोग किए हैं। इससे शासक वर्ग की स्वेच्छाचारिता का फल जनता को नहीं भोगना पड़ता। लोकतांत्रिक राज्य में ये प्रतिबन्ध, विधि का शासन (Rule of Law), मौलिक अधिकार (Fundamental Rights), शक्तियों का पथक्करण (Separation of Powers) तथा परम्पराएं व सामाजिक बहुलवाद (Convention and Pluralism) आदि के रूप में होते हैं। जब राज्य का शासन कानून के अनुसार चलाया जाएगा और नागरिकों के अधिकारों का अतिक्रमण नहीं होगा तो संविधानवाद को हिलाने वाला कोई नहीं हो सकता। यदि संविधान में ही शासन के तीनों अंगों की शक्तियों का पथक्करण कर दिया जाएगा तो शक्तियों का केन्द्रीयकरण नहीं होगा और शासक वर्ग निरंकुश नहीं बन सकेगा तो संविधानवाद मजबूत स्थिति में बना रह सकता है। इसी तरह सामाजिक परम्पराएं तथा बहुलवाद जब इतना मजबूत होगा कि साधारण सी राजनीतिक उथल–पुथल अराजकता पैदा करने में नाकाम रहे तो संविधानवाद को बनाए रखने में कोई परेशानी नहीं हो सकती। इस तरह संविधान में इन प्रतिबन्धों की व्यवस्था किए बिना संविधानवाद के स्थायित्व की कल्पना नहीं की जा सकती। ये प्रतिबन्ध ही शासन को सीमित व उत्तरदायी बनाते हैं। अतः प्रतिबन्धों द्वारा सीमित व उत्तरदायी सरकार ही संविधानवाद का आधार है। इसलिए संविधान का राजनीतिक शक्ति पर नियन्त्रण लगाना अनिवार्य है।

(3) **संविधान विकास के निदेशक के रूप में (The Constitution as the Director of Development)** :- संविधान में विकास का गुण भी होना चाहिए। वर्तमान में ही प्रभावी शक्ति बने रहने से वह भविष्य के प्रति उदासीन बन सकता है। इसलिए उसमें गतिशीलता तथा लोचशीलता का गुण भी होना चाहिए। समय व परिस्थितियों के अनुसार राजनीतिक समाज के मूल्यों, आदर्शों, मान्यताओं आदि में परिवर्तन होते रहते हैं। पुराने राजनीतिक मूल्यों व आदर्शों का स्थान नए मूल्य व आदर्श लेने के लिए तैयार रहते हैं, केवल उन्हें राजनीतिक समाज की अनुमति की प्रतिज्ञा होती है। इसलिए प्रत्येक देश के संविधान में नवीन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए इन परिवर्तित व सम्वद्धित मूल्यों को ग्रहण करने की क्षमता का होना आवश्यक है। यदि कोई भी संविधान भावी विकास की योजना की उपेक्षा करता है तो वह राजनीतिक समाज की सहानुभूति खो देता है और क्रान्ति का शिकार हो सकता है। गतिहीनता को प्राप्त संविधान समाज के सामान्य व गौण उद्देश्यों को प्राप्त करने की बजाय उसमें वाचक बनकर राजनीतिक व सामाजिक विकास का मार्ग अवरुद्ध करता है। इसलिए संविधान को राजनीतिक समाज की बदलती हुई मान्यताओं या संस्कृति का सम्मान करना चाहिए ताकि संविधानवाद की व्यवहारिकता बनी रहे और संविधानवाद एक गत्यात्मक धारण बनी रहे।

(4) **संविधान राजनीतिक शक्ति के संगठक के रूप में (The Constitution as an organisor of Political Authority)**:- संविधान किसी भी शासन–व्यवस्था को वैधता या औचित्य प्रदान करता है। वह यह बात सुनिश्चित करता है कि सरकार के समस्त क्रिया–कलाप उसके अधिकार क्षेत्र के अनुसार ही हों और स्वयं सरकार भी वैधता का गुण बनाए रखे। इसलिए संविधान सरकार की सीमाओं की स्थापना के साथ–साथ सरकार की विभिन्न संस्थाओं में शक्तियों का लम्बात्मक तथा अम्बरान्तीय (Vertical and Horizntal) विभाजन व वितरण भी करता है। संविधान राजनीतिक शक्ति का संगठक उसी अवस्था में रह सकता है जबकि संविधान द्वारा यह व्यवस्था हो कि सरकार के कार्य अधिकार–युक्त रहें तथा सरकार स्वय भी वैध हो। यदि ऐसा न होगा तो सरकार विरोधी शक्तियां सरकार को गिरा सकती हैं। सरकार को संविधान के लक्ष्यों को प्राप्त करने के

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner